(जन्मशती वर्ष के मौके पर)

वर्तमान दौर में कर्पूरी ठाकुर की प्रासंगिकता

प्रेम सिंह

समाजवादी नेता मधु लिमये (1 मई 1922-8 जनवरी 1995) के जन्मशती वर्ष के उपलक्ष्य में पिछले दो सालों से विविध कार्यक्रम हो रहे हैं। जनवरी से दो और प्रमुख समाजवादी नेताओं मधु दंडवते (21 जनवरी 1924-12 नवंबर 2005) और कर्पूरी ठाकुर (24 जनवरी 1924-17 फरवरी 1988) के जन्मशती वर्ष भी शुरू हो गए हैं। 'जननायक कर्पूरी ठाकुर फाउंडेशन' की ओर से हैदराबाद में 24 जनवरी को कर्पूरी ठाकुर जन्मशती समारोह की शुरुआत हुई। उस कार्यक्रम के मुख्य अतिथि सुप्रीम कोर्ट के अवकाश-प्राप्त न्यायाधीश बी सुदर्शन रेड्डी ने कर्पूरी ठाकुर की राजनीति और विचारधारा पर प्रकाश डाला। सम्बलपुर यूनिवर्सिटी के पूर्व कुलपति समाजशास्त्री प्रोफेसर बीसी बरीक, उस्मानिया यूनिवर्सिटी के समाजशास्त्र के पूर्व प्रोफेसर जी सत्यनारायण, 'जननायक कर्पूरी ठाकुर फाउंडेशन' के संयोजक एम सूर्यानारायण समेत कई अन्य महत्वपूर्ण वक्ताओं के साथ मुझे भी उस कार्यक्रम में भाग लेने का अवसर मिला। हैदराबाद से कर्पूरी ठाकुर के जन्मशती समारोह की शुरुआत एक महत्वपूर्ण संकेत है। इस सांस्कृतिक और राजनीतिक रूप से अर्थपूर्ण शहर से डॉक्टर राममनोहर लोहिया का विशिष्ट संबंध रहा था, जिनके विचारों का कर्पूरी ठाकुर पर शायद सबसे ज्यादा प्रभाव था।

कर्पूरी ठाकुर बहुमुखी प्रतिभा के धनी नेता थे। वे जितना राजनीति और समाजवादी विचारधारा में पैठे थे, उतना ही साहित्य, कला और संस्कृति में। जानकार बताते हैं कि हर साफ़र में अक्सर किताबों से भरा बस्ता उनके साथ होता था। उनका अपना प्रशिक्षण समाजवादी विचारधारा में हुआ था। हालांकि, फुले, अंबेडकर और पेरियार समेत सभी परिवर्तनकारी विचारों को वे आत्मसात करके चलते थे। लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, नागरिक स्वतंत्रता, मानवाधिकार जैसे मूलभूत आधुनिक मूल्यों के प्रति उनकी गहरी प्रतिबद्धता थी। सादगी और अपने पद का अपने परिवार और मित्रों के लिए किंचित भी फायदा नहीं उठाने की उनकी खूबी उनके स्वाभिमानी व्यक्तित्व के अलावा गांधीवादी-समाजवादी धारा से भी जुड़ी थी। आशा की जानी चाहिए कि उनकी जन्मशती के दौरान होने वाले सरकारी और गैर-सरकारी कार्यक्रमों में कर्पूरी ठाकुर के व्यक्तित्व, राजनीति और विचारधारा से जुड़े विविध पहलुओं पर गम्भीरतापूर्वक विचार होगा। उनके योगदान का मूल्यांकन देश के मौजूदा हालातों के मद्देनजर किया जाएगा, तो उनकी प्रासंगिकता बढ़ेगी और संकट के समाधान के कुछ सूत्र हासिल हो सकेंगे।

देश की वर्तमान राजनीति कॉर्पोरेट-कम्यूनल गठजोड़ के भंवर में घूम रही है। यह संकट और गहरा हो जाता है, जब देश का ज्यादातर इंटेलिजेंसिया भी उसी भंवर में फंसा नजर आता है। इस जटिल संकट के कई पहलू हैं। उनमें एक पहलू है कि देश की राजनीति और राजनीतिक विमर्श सांप्रदायिक जातिवाद और जातिवादी अस्मितवाद का अखाड़ा बन गए हैं। चुनावों में राजनीतिक सत्ता हासिल करने के लिए अतीत

के मिथकों, प्रसंगों, चरित्रों, कृतियों, लेखकों आदि को लेकर नित नया घमासान मचा रहता है। प्रेस, मीडिया, संगोष्ठियों और व्यक्तिगत चर्चाओं में इस तरह के विवाद छाए रहते हैं। यह अकारण नहीं है। जब किसी देश की राजनीति संवैधानिक विचारधारा की धुरी से उतर जाती है, तब निरर्थक और कलही विवाद राजनीतिक विमर्श में अपनी केंद्रीय जगह बनाते हैं।

आरएसएस/भाजपा का सांप्रदायिक जातिवाद और सामाजिक न्याय की दावेदार पार्टियों/नेताओं का जातिवादी अस्मितावाद - दोनों देश की मुख्यधारा राजनीति में पिछले तीन दशकों से जारी भद्दे किस्म के निजीकरण/उदारीकरण की नीतियों के अभिन्न अंग और पोषक बने हुए हैं। आश्चर्य की बात नहीं है कि दोनों कैम्प के नेता सत्ता के लिए एक-दूसरे कैम्प में आवाजाही करते रहते हैं। उदाहरण के लिए हाल ही में तुलसी-कृत 'रामचरितमानस' को लेकर छिड़े विवाद के एक प्रमुख किरदार स्वामी प्रसाद मौर्य जनता दल (1991-96), बहुजन समाज पार्टी (1996-2016), भारतीय जनता पार्टी (2016-2022) से होते हुए फिलहाल समाजवादी पार्टी में हैं।

इस राजनीतिक माहौल में कर्पूरी ठाकुर जन्मशती वर्ष की विशेष प्रासंगिकता बनती है। कर्पूरी ठाकुर अति पिछड़ी और संख्या में अत्यल्प जाति से थे। फिर भी उन्होंने अपनी एक स्वतंत्र राजनीतिक हैसियत बनाई। कर्पूरी ठाकुर स्वतंत्रता आंदोलन और समाजवादी आंदोलन की संतान थे। उन्होंने अपनी राजनीतिक पारी की शुरुआत हमेशा के लिए कॉलेज की पढ़ाई छोड़ कर भारत छोड़ो आंदोलन में हिस्सेदारी से की थी। वे 1952 के चुनावों में बिहार विधानसभा के सदस्य निर्वाचित हुए थे। तब से लेकर मृत्युपर्यंत उन्होंने हमेशा लगातार विधानसभा चुनाव में जीत हासिल की। उन्होंने 1977 में समस्तीपुर से लोकसभा का चुनाव जीता। अपने पूरे राजनीतिक कैरियर में वे केवल 1984 का लोकसभा का चुनाव हारे थे। बिहार विधानसभा में उन्होंने लंबे समय तक नेता विपक्ष की भूमिका निभाई। वे दो बार बिहार के मुख्यमंत्री बने - पहली बार 22 दिसंबर 1970 से 2 जून 1971 तक, और दूसरी बार 24 जून 1977 से 21 अप्रैल 1979 तक। उन्होंने बिहार में पिछड़ों के लिए 26 प्रतिशत आरक्षण का फार्मूला तैयार किया, और उसे लागू किया। विधायक, मंत्री, उपमुख्यमंत्री और मुख्यमंत्री के रूप में उन्होंने और भी कई महत्वपूर्ण काम किए।

प्रतिबद्ध समाजवादी होने के नाते उन्होंने हमेशा वंचित समूहों को आगे लाने का प्रयास किया, लेकिन वे खुद को पूरे बिहार की जनता का प्रतिनिधि मानते थे। उनकी 'छोटी' जाति सहित बहुत-सी बाधाएं उनके रास्ते में आती रहीं, लेकिन उन्होंने अपने राजनीतिक संघर्ष और विचारधारात्मक प्रतिबद्धता से उन बाधाओं का मुकाबला किया। कभी सांप्रदायिक जातिवाद और जातिवादी अस्मितावाद का सहारा नहीं लिया। लिहाजा, वे किसी जाति-विशेष के नेता नहीं, 'जननायक' के रूप में प्रतिष्ठित हुए। उनके व्यक्तित्व की इस खूबी को जाबिर हुसैन की कविता 'भीड़ से घिरा आदमी' के माध्यम से भी समझा जा सकता है:

"*वो आदमी/ जो/ भीड़ से घिरा है,/ बहुतों की नज़र में/ सिरफिरा है।/ दरअसल/ वो आदमी/ जो/ हाथों में/ नींव की ईंट/ और आँखों में/ कल के सपने लिए/ तेज कदमों से आगे बढ़ा है,/ कई बार/ तारीख के पन्नों में/ बेवजह/ सूली पर चढ़ा है।/ वो आदमी/ जो/ सदियों से/ सभ्यता के/ मान-अपमान/ हिंसा-प्रतिहिंसा/ आरोप-प्रत्यारोप/ सहता रहा है,/ दरअसल/ वो आदमी बहुतों के लिए/ चुनौती का/ विषय रहा है।/ वो आदमी/ जो/ अँधेरे को भेद कर/ रोशनी का/ संबल बना है,/ दरअसल/ वो आदमी/ संकल्प/ और/ कर्म का योगी/ लोहे का बना है।/ वो आदमी/ जो याचना नहीं/ रण को समर्पित है,/ दरअसल/ वो आदमी/ मिट्टी और बालू/ ईंट और गारे को अर्पित है।/ यह सही है/ कि/ जुल्म/ और सितम का का कुहासा/ अभी घना है,/ और/ खामोश आबादियों को/ सिर उठाना/ अभी मना है।/ मगर/ वो आदमी/ जो भीड़ से घिरा है,/ क्या तुमने नहीं देखे/ उसकी हथेलियों पर/ कीलों के निशान/ कीर्तिमान,/ क्या तुमने नहीं पढ़ी/ उसकी पेशानी पर लिखी/ दास्तान।/ वो आदमी/ जो भीड़ से घिरा है,/ दरअसल/ परमात्मा नहीं/ भीड़ की आत्मा है।*"

कर्पूरी ठाकुर पर कई कविताएं लिखी गईं हैं। उनमें यह सर्वश्रेष्ठ है। यह कविता बताती है कि कर्पूरी ठाकुर का व्यक्तित्व क्षेत्र, जाति और धर्म से बंधा नहीं था। देश से भी वह बस उतना ही बंधा था कि उपनिवेशवादी गुलामी से उसकी मुक्ति हो; ताकि बहुपरती सामंतवादी-वर्चस्ववादी व्यवस्था को बदल कर बराबरी का समाज कायम किया जा सके। यह कविता यह भी बताती है कि उनकी शख्सियत पूजा के लिए नहीं है; संघर्ष की प्रेरणा के लिए है।

स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान खुद कर्पूरी ठाकुर ने 'हम सोए वतन को जगाने चले हैं' शीर्षक कविता बनाई थी: "*हम सोए वतन को जगाने चले हैं/ हम मुर्दा दिलों को जिलाने चले हैं।/ गरीबों को रोटी न देती हुकूमत,/ जालिमों से लोहा बजाने चले है।/ हमें और ज्यादा न छेड़ो, ए जालिम!/ मिटा देंगे जुल्म के ये सारे नज़ारे।/ या मिटने को खुद हम दीवाने चले हैं/ हम सोए वतन को जगाने चले हैं।*" यह कविता एक समय समाजवादी आंदोलन के संघर्ष में 'प्रभात फेरी' का गीत बन गई थी। यह कविता भी बताती है कि कर्पूरी ठाकुर वंचित-शोषित समूहों के नेता थे। डॉक्टर लोहिया की यह स्थापना कि जातियां शिथिल होकर वर्गों में परिणत हो जाती हैं और वर्ग संघटित होकर जातियों का रूप धारण कर लेते हैं, कर्पूरी ठाकुर की जाति और वर्ग के सवाल की समझ को व्यावहारिक स्तर पर निर्देशित करती है। सामाजिक न्याय के नाम पर सामंती शैली में परिवारवादी राजनीति करने वाले नेता जब खुद को कर्पूरी ठाकुर की विरासत का वाहक बताते हैं, तो उनका अवमूल्यन ही होता है!

राजनीति में दलित, आदिवासी, पिछड़ों, महिलाओं और गरीब मुसलमानों को राजनीति में आगे लाने की लोहिया की पेशकश देश की सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक संरचना को हमेशा के लिए बदल डालने का एक युगांतरकारी विचार था। लोहिया ने इन हाशिये पर स्थित समुदायों के दिमाग के वि-ब्राह्मणीकरण (डि-ब्राहमणाईजेशन) और वि-औपनिवेशीकरण (डि-कोलोनाईजेशन) की आशा की थी। क्योंकि यह दिमाग पुराने ब्राह्मणवादी और नए उपनिवेशवादी मूल्य-विधान से बहुत हद तक एक मुक्त क्षेत्र था। इस रूप में वह 'दिमाग' सांप्रदायिक फासीवाद और पूंजीवादी साम्राज्यवाद की स्थायी काट हो सकता था। लेकिन युगांतर उपस्थित करने की संभावनाओं से भरी लोहिया की इस पेशकश को सामाजिक न्याय की

राजनीति करने वाले नेताओं ने फूहड़ जातिवाद में घटित कर दिया; और उसे सांप्रदायिक फासीवाद और पूंजीवादी साम्राज्यवाद की सेवा में लगा दिया। पिछड़े/दलित नेताओं में अकेले कर्पूरी ठाकुर ने अपने राजनीतिक कर्म में लोहिया की आशा को अपने व्यक्तित्व और राजनैतिक कर्म में फलीभूत करके दिखाया। मौजूदा संकट के दौर में उनकी प्रासंगिकता का यह सबसे महत्वपूर्ण आयाम है, जिसे उनके जन्मशती वर्ष के कार्यक्रमों में रेखांकित किया जाना चाहिए।

(*समाजवादी आंदोलन से जुड़े लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व शिक्षक और भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला के पूर्व फेलो हैं*)